राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 445/2002

बजाज ऑटो फाइनेंस लिमिटेड सी/ओ पी.एल. मोटर्स लिमिटेड, भगवती भवन, एमआई रोड, जयपुर अपने शाखा प्रभारी श्री के माध्यम से। जी.जी. शेटे.

---- गैर-दावेदार-अपीलार्थी

बनाम

1. श्री **रघुनाथ** पुत्र श्री विजयलाल कुमावत, निवासी ढाणी रामबाग, ग्राम नींदढ़, जिला जयपुर।

---- दावेदार-प्रत्यर्थी

2. किशनगोपाल पुत्र श्री. तुलसीराम, निवासी ग्राम मीना वाला, कनकपुरा, जयपुर।

---- गैर-दावेदार-प्रत्यर्थी

अपीलार्थी(गण) की ओर से	:	सुश्री सुरुचि कासलीवाल श्री प्रियांश जैन सुश्री अलीशा चोपड़ा और श्री धर्मेन्द्र प्रताप सिंह राठौड़
प्रत्यार्थी(गण) की ओर से	:	श्री सतीश कुमार खंडाल श्री प्रहलाद शर्मा श्री आर.पी.शर्मा

माननीय न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढंड

<u>निर्णय</u>

<u>12/10/2022</u>

<u>रिपोर्टेबल</u>

मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जयपुर (संक्षेप में, 'अधिकरण') सह राजस्थान सरकार सहकारी अधिकरण, जयपुर द्वारा एमएसी केस संख्या 99/94 में, दिनांक 10.08.2000 को पारित निर्णय और पंचाट के विरूद्ध गैर-दावेदार/अपीलार्थी द्वारा त्वरित अपील दायर की गई है। जिसके द्वारा दावेदार प्रत्यर्थियों द्वारा दायर दावा याचिका की अनुमति दी गई थी और अधिकरण द्वारा अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या 2 को 38,000/- रुपये की मुआवजे की

राशि का भुगतान करने का निर्देश जारी किया गया था।

मामले का संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 30.11.1993 को एक दुर्घटना हुई जिसमें रघुनाथ के साथ-साथ राधेश्याम को भी कुछ चोटें आईं। दुर्घटना में घायल होने के कारण राधेश्याम की मौत हो गई। मामले की सूचना पुलिस को दी गई जहां ड्राइवर और हमलावर वाहन के मालिक के विरूद्ध एफआईआर संख्या 422/1993 दर्ज की गई। इसके बाद, अधिकरण के समक्ष दो अलग-अलग दावा याचिकाएं प्रस्तुत की गईं, एक मृतक राधेश्याम के आश्रितों द्वारा और दूसरी घायल दावेदार-प्रत्यर्थी रघुनाथ द्वारा। विद्वान अधिकरण ने, दोनों दावों को समेकित करने के बाद, दिनांक 10.08.2000 को एक सामान्य निर्णय पारित किया, जिसमें अपीलार्थी, जो वाहन का फाइनेंसर है, के साथ-साथ वाहन के पंजीकृत मालिक, अर्थात प्रत्यर्थी संख्या-2 पर मुआवजे का भुगतान करने का दायित्व तय किया गया।

प्रारंभ में इस न्यायालय के ध्यान में यह लाया गया है कि दिनांक 10.08.2000 के सामान्य निर्णय से उत्पन्न दो अलग-अलग अपीलें इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं। एसबीसीएमए संख्या 439/2002 वाली संबंधित अपील का निर्णय इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 11.04.2012 के आदेश के तहत किया था, जिसके तहत अपीलार्थी द्वारा दायर अपील खारिज कर दी गई थी।

अधिवक्ता का कहना है कि मोटर यान अधिनियम 1988 (संक्षेप में, '1988 का अधिनियम') की धारा 168 के तहत निहित प्रावधानों के मद्देनजर, अपीलार्थी को दावेदारों को मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि वाहन के फाइनेंसर के विरूद्ध ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि अधिनियम 1988 की धारा 168 के अनुसार, ऐसा निर्देश केवल वाहन के बीमाकर्ता/मालिक/चालक के विरूद्ध ही जारी किया जा सकता है। उनका कहना है कि अपीलार्थी एक वित्त कंपनी है और 1988 के अधिनियम की धारा 2, उप-धारा 30 में परिभाषित 'मालिक' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है। अधिवक्ता का कहना है कि 1988 के अधिनियम की धारा 146 के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को किसी भी ऐसे मोटर यान का किसी भी सार्वजनिक स्थान पर उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक वाहन का बीमा न हो। उन्होंने आगे कहा कि यह तथ्य विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 वाहन का चालक और मालिक है और उसने 1988 के अधिनियम की धारा 146 के अनुसार बीमा कराए बिना अपने वाहन का सार्वजनिक स्थान पर उपयोग किया।

अधिवक्ता का कहना है कि इन सभी प्रावधानों पर विचार करने के बाद, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गोदावरी फाइनेंस कंपनी बनाम डेगाला सत्यनारायणम्मा और अन्य; (2008) 5 एससीसी 107** के मामले में, माना कि वित्त कंपनी दावेदारों को कोई मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी नहीं है। उनका कहना है कि उपरोक्त प्रावधानों को दोहराते हुए और उपरोक्त निर्णय का पालन करते हुए, बाद में, **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड बनाम रेशमा और अन्य; (2015) 3 एससीसी 679** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यही दृष्टिकोण अपनाया है और माना है कि जिस वित्त कंपनी ने मालिक को उसके वाहन की खरीद के लिए वित्त पोषण किया था और मालिक ने बैंक के साथ एक बंधक समझौता किया था, उधारकर्ता पर वाहन का बीमा कराने का प्रारंभिक दायित्व था और यदि वाहन का बीमा नहीं है, तो वाहन के दुर्घटनाग्रस्त होने की स्थिति में वित्त कंपनी को दावेदारों को किसी भी मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है। अधिवक्ता का कहना है कि यद्यपि इस संबंध में प्रस्तुतियाँ एसबीसीएमए संख्या 439/2002 के निर्णय के समय इस न्यायालय की समन्वय पीठ के समक्ष की गई थीं, लेकिन इन तथ्यों पर विचार नहीं किया गया और इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा इसे नजरअंदाज कर दिया गया। अधिवक्ता का कहना है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **त्रिभुवनदास पुरषोत्तमदास ठाकुर बनाम रतिलाल मोतीलाल पटेल, (1968) 1 एससीआर 455** के मामले में माना है कि जब यह एकल बेंच या खंडपीठ प्रतीत होता है कि किसी मुद्दे पर कोर्ट के विरोधाभासी निर्णय हैं, तो मामले को विपरीत दृष्टिकोण अपनाने के बजाय कोर्ट की खंडपीठ या विशेष या पूर्ण बेंच को भेजा जाना चाहिए। अधिवक्ता का कहना है कि इन परिस्थितियों में, एक उचित आदेश पारित किया जाए।

इसके विपरीत, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का विरोध किया है और कहा है कि एक बार जब इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने उसी वित्त कंपनी द्वारा दिनांक 11.04.2012, के निर्णय के तहत दायर समान संबंधित अपील को पहले ही खारिज कर दिया था, इस न्यायालय के पास अलग दृष्टिकोण अपनाने का कोई अवसर उपलब्ध नहीं है क्योंकि समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय को अपीलार्थी द्वारा अपीलीय न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई है और इसे अंतिम रूप मिल चुका है। उन्होंने आगे कहा कि अधिकरण द्वारा पारित पंचाट संतुष्ट हो चुका है और दावेदार को मुआवजे की राशि का भुगतान पहले ही किया जा चुका है। उन्होंने आगे कहा कि 38,000/-

रुपये की बहुत छोटी राशि इसमें शामिल है, इसलिए तत्काल मामले में अलग दृष्टिकोण नहीं लिया जा सकता है। अधिवक्ता का कहना है कि इन परिस्थितियों में इस न्यायालय का हस्तक्षेप उचित नहीं है। हालाँकि, प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता **गोदावरी फाइनेंस कंपनी (सुप्रा.) और एचडीएफसी बैंक लिमिटेड बनाम रेशमा (सुप्रा.)** के मामले में कानून की तय स्थिति को उलटने की स्थिति में नहीं हैं।

बार द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को सुना गया और उन पर विचार किया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

यह तथ्य विवादित नहीं है कि दुर्घटना 30.11.1993 को प्रत्यर्थी संख्या 2 की तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई, जिसमें रघुनाथ और एक राद्येश्याम को चोटें आईं और बाद में उन चोटों के कारण राधेश्याम की मृत्यु हो गई। यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि मुआवज़ा पाने के लिए अधिकरण के समक्ष दो अलग-अलग दावा याचिकाएँ प्रस्तुत की गईं और दोनों याचिकाएँ दिनांक 10.08.2000 के सामान्य निर्णय द्वारा तय की गईं। यह तथ्य भी विवाद में नहीं है कि अपीलार्थी ने उसी निर्णय के विरूद्ध इस न्यायालय के समक्ष एसबीसीएमए संख्या 439/2002 दायर किया था जिसे 11.04.2012 को खारिज कर दिया गया था और यह तथ्य भी विवाद में नहीं है कि उपरोक्त निर्णय पर अपीलार्थी ने अपीलीय फोरम के समक्ष आपत्ति नहीं जताई है, और उसे अंतिम रूप मिल गया है। हालाँकि, जो प्रश्न अभी भी इस न्यायालय के विचाराधीन है, वह यह है कि क्या इस न्यायालय को तत्काल मामले में दिनांक 11.04.2012 के उसी निर्णय का पालन करना चाहिए या क्या यह न्यायालय **गोदावरी फाइनेंस कंपनी (सुप्रा.) और एचडीएफसी बैंक लिमिटेड बनाम रेशमा (सुप्रा.)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों के विरूद्ध एक अलग दृष्टिकोण अपना सकता है। जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि जब वाहन के मालिक ने वाहन का बीमा नहीं कराया है तो फाइनेंसर/वित्त कंपनी को दावेदारों को मुआवजे का कोई भी भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

गोदावरी फाइनेंस कंपनी (सुप्रा.) के मामले में निम्नानुसार यह माना गया है:-

13. ऐसे किसी मोटर वाहन के मामले में जो किराया खरीद समझौते के अधीन है, वित्तपोषक को आमतौर पर मालिक नहीं माना जा सकता है। वह व्यक्ति जिसके पास वाहन

का कब्ज़ा है, न कि मालिक होने के नाते फाइनेंसर, मोटर दुर्घटना के लिए क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा।

14. मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण का गठन अधिनियम की धारा 165 के अध्याय XII में आने वाली शर्तों के अनुसार किया जाता है। धारा 166 में बताया गया है कि मुआवजे के लिए आवेदन किस तरह से दायर किया जाना चाहिए और इसे कौन दाखिल कर सकता है। धारा 168 दावा अधिकरण के पंचाट से संबंधित है, इसकी उपधारा (1) इस प्रकार है: :-

"168. दावा अधिकरण का पंचाट

(1) धारा 166 के तहत मुआवजे के लिए आवेदन प्राप्त होने पर, दावा अधिकरण, बीमाकर्ता को आवेदन की सूचना देने और पार्टियों (बीमाकर्ता सहित) को सुनवाई का अवसर देने के बाद, प्रत्येक दावे में मामले की जांच करेगा या, जैसा भी मामला हो, और, धारा 162 के प्रावधानों के अधीन मुआवजे की वह राशि निर्धारित करने के लिए एक पंचाट दे सकता है जो उचित प्रतीत होती है और उस व्यक्ति या व्यक्तियों को निर्दिष्ट करता है जिन्हें मुआवजा दिया जाएगा और पंचाट देने में दावा अधिकरण उस राशि को निर्दिष्ट करेगा जो दुर्घटना में शामिल वाहन के बीमाकर्ता या मालिक द्वारा या चालक या उनमें से सभी के द्वारा या किसी एक द्वारा, जैसा भी मामला हो भुगतान की जाएगी।

बशर्ते कि जहां ऐसा आवेदन किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी विकलांगता के संबंध में धारा 140 के तहत मुआवजे के लिए दावा करता है, ऐसा दावा और ऐसी मृत्यु या स्थायी विकलांगता के संबंध में मुआवजे के लिए कोई अन्य दावा (चाहे ऐसे आवेदन में किया गया हो या अन्यथा) को अध्याय X के प्रावधानों के अनुसार निपटान किया जाएगा।"

उपरोक्त प्रावधानों के संदर्भ में, अधिकरण को बीमाकर्ता को एक नोटिस जारी करना आवश्यक है और बीमाकर्ता सहित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद, उसे दावों की जांच करनी चाहिए और उस व्यक्ति का निर्धारण करना चाहिए जो इसके लिए उत्तरदायी होगा। वह एक पंचाट दे सकता है और ऐसा करते समय यह उस राशि को निर्दिष्ट कर सकता है जिसका भुगतान बीमाधारक या दुर्घटना में शामिल वाहन के मालिक या चालक या उनमें से सभी या किसी एक जैसा भी मामला हो द्वारा किया जा सकता है।

15. मोटर यान के उपयोग से उत्पन्न व्यक्तियों की मृत्यु या शारीरिक चोट से किसी या तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को होने वाली क्षति, या दोनों संबंधित दुर्घटना के संबंध में मुआवजे के दावे पर निर्णय लेने के लिए अधिनियम की धारा 165 के तहत गठित

अधिकरण के समक्ष मुआवजे के भुगतान के लिए आवेदन दायर किया जाता है। मुआवजे के दावे पर विचार करने के लिए मोटर यान का उपयोग अनिवार्य शर्त है। आम तौर पर यदि वाहन का चालक उसका उपयोग करता है, तो उसका कब्ज़ा या नियंत्रण उसके पास रहता है। वाहन के मालिक का, हालांकि दुर्घटना के समय वाहन के उपयोग से कोई लेना-देना नहीं हो सकता है, वास्तव में उसे चालक के नियोक्ता के रूप में रचनात्मक रूप से उत्तरदायी माना जा सकता है। इसलिए, पंचाट पारित करने के लिए जो आवश्यक है वह उन व्यक्तियों की देनदारियों का पता लगाना है जो वाहन के उपयोग में शामिल हैं या जो व्यक्ति परोक्ष रूप से उत्तरदायी हैं। बीमा कंपनी ऐसे दावों के लिए एक आवश्यक पक्ष बन जाती है क्योंकि यदि वाहन का मालिक उत्तरदायी पाया जाता है, तो वह मालिक को प्रतिपूर्ति करनी होगी क्योंकि जहां तक किसी तीसरे पक्ष का संबंध है, वाहन अनिवार्य रूप से बीमा योग्य है, जैसा कि धारा 147 के तहत माना गया है। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि वाहन का कब्ज़ा या नियंत्रण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

16. राजस्थान सरकार सड़क परिवहन निगम बनाम कैलाश नाथ कोठारी और अन्य (1997) 7 एससीसी 481 मामले में इस न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न विचार के लिए आया: जहां एक वाहन के मालिक ने राजस्थान सरकार सड़क परिवहन निगम को बस किराए पर दी थी। यह दुर्घटना का शिकार हो गयी। इस तथ्य के बावजूद कि बस का चालक पंजीकृत मालिक का कर्मचारी था, यह माना गया था :-

“17….बस का ड्राइवर, भले ही मालिक का कर्मचारी हो, प्रासंगिक समय पर बस के संचालन के लिए आरएसआरटीसी के कंडक्टर के आदेश और कमान के तहत अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा था। जहां तक उस दुर्भाग्यपूर्ण बस के यात्रियों का सवाल है, उनके अनुबंध की गोपनीयता केवल आरएसआरटीसी के साथ थी, जिसे उन्होंने उस बस में यात्रा करने के लिए किराया दिया था और इसलिए बस में यात्रा करते समय उनकी सुरक्षा आरएसआरटीसी की जिम्मेदारी बन गई। उनका बस के मालिक श्री संजय कुमार के साथ अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं थी। यदि यह केवल ड्राइवर की सेवाओं के हस्तांतरण का मामला होता, न कि ड्राइवर का नियंत्रण मालिक से आरएसआरटीसी को हस्तांतरित करने का, तो मामला कुछ अलग हो सकता था। लेकिन पर इस मामले में तथ्य और समझौते (सुप्रा.) की शर्तों 4 से 7 के मद्देनजर, आरएसआरटीसी के अनुबंध के तहत बस चलाते समय ड्राइवर द्वारा किए गए अपकृत्य के लिए आरएसआरटीसी को परोक्ष रूप से उत्तरदायी माना जाना चाहिए।

कानून का सामान्य प्रस्ताव और उससे उत्पन्न होने वाली धारणा यह है कि एक नियोक्ता, अर्थात वह व्यक्ति जिसके पास कर्मचारी को काम पर रखने और नौकरी से निकालने का अधिकार है, आम तौर पर उसके रोजगार के दौरान और उसके अधिकार भीतर संबंधित कर्मचारी द्वारा किए गए अपकृत्य के लिए परोक्ष रूप से जिम्मेदार होता है। यदि मूल नियोक्ता यह स्थापित करने में सक्षम है कि जब नौकर को उधार दिया गया था, तो उस पर प्रभावी नियंत्रण भी किराए पर लेने वाले को स्थानांतरित कर दिया गया था, मूल मालिक अपने दायित्व से बच सकता है और अस्थायी नियोक्ता या किराए पर लेने वाला, जैसा भी मामला हो, होना चाहिए। इस तथ्य के बावजूद कि ड्राइवर मूल मालिक के पेरोल पर बना रहेगा, संबंधित कर्मचारी द्वारा अपने रोजगार के दौरान किराएदार के आदेश और नियंत्रण के तहत किए गए अपकृत्य के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया जाएगा। जैसा कि ऊपर देखा गया है, सामान्य सिद्धांत पर आधारित प्रस्ताव का इस मामले में न केवल पार्टियों द्वारा दिए गए साक्ष्यों के आधार पर, बल्कि शर्तों 6 और 7 (सुप्रा.) के आधार पर भी पर्याप्त रूप से खंडन किया गया है, जो दर्शाता है कि मालिक ने न केवल ड्राइवर की सेवाओं को आरएसआरटीसी को हस्तांतरित की थी, लेकिन वास्तविक नियंत्रण भी हस्तांतरित किया था और ड्राइवर को कंडक्टर और आरएसआरटीसी के अन्य अधिकारियों के निर्देशों, नियंत्रण और आदेश के तहत कार्य करना था।"

17. इस न्यायालय के समक्ष हाल में, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम दीपा देवी और अन्य: 2007 (14) स्केल 168 का मामला आया। मामले में यह प्रश्न हाल ही में इस न्यायालय के समक्ष फिर से विचार के लिए आया। यह न्यायालय उस मामले से निपट रहा था जहां प्रश्नगत वाहन की मांग राज्य सरकार द्वारा की गई थी। राज्य सरकार ने यह मानते हुए कि वाहन का मालिक उत्तरदायी नहीं होगा, यह राय दी गई:-

"10. संसद ने 1939 के अधिनियम या 1988 के अधिनियम के तहत इस प्रकार की स्थिति पर विचार नहीं किया। इसमें कोई संदेह नहीं है, प्रत्यर्थी संख्या 3 और 4 पृष्ठ 4561 इस तथ्य के बावजूद वाहन के पंजीकृत मालिक बने रहे कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत प्रदत्त अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए इसकी मांग की गई थी। किसी क़ानून में निहित प्रावधानों के अनुसार, एक वैधानिक प्राधिकारी द्वारा एक वाहन की मांग की जाती है। वाहन का मालिक उपायुक्त द्वारा वाहन की मांग के आदेश का पालन करने से इनकार नहीं कर सकता है। जबकि वाहन मांग के अधीन था, मालिक

उस पर कोई नियंत्रण नहीं रखता है। ड्राइवर अभी भी मालिक का कर्मचारी हो सकता है लेकिन उसे वाहन राज्य के उस अधिकारी के निर्देशानुसार चलाना होगा, जिसे उसका प्रभारी बनाया गया है। कानूनी स्वामित्व को छोड़कर, सभी इरादों और उद्देश्यों के लिए, वाहन का पंजीकृत मालिक उस पर पूरा नियंत्रण खो देता है। उन्हें इस बारे में यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि किसी निश्चित समय पर वाहन चलाना चाहिए या नहीं। वह ड्राइवर को खराब सड़क पर गाड़ी न चलाने के लिए नहीं कह सकता। वह या ड्राइवर संभवतः यह नहीं कह सकते थे कि रात में गाड़ी नहीं चलायी जायेगी। मांग का उद्देश्य वाहन का उपयोग करना है। जिस अवधि तक वाहन राज्य और/या उसके अधिकारियों के नियंत्रण में रहता है, उस अवधि के लिए मालिक अधिनियम के अनुसार केवल मुआवजे के भुगतान का पात्र है, लेकिन वह उस पर कोई नियंत्रण नहीं रख सकता है। इस प्रकार की स्थिति में, इस न्यायालय को यह मानकर आगे बढ़ना चाहिए कि संसद ने 1988 का अधिनियम बनाते समय ऐसी स्थिति की परिकल्पना नहीं की थी। यदि किसी दी गई स्थिति में, 1988 के अधिनियम में निहित वैधानिक परिभाषाओं को अक्षरश: लागू नहीं किया जा सकता है, तो इसे सामान्य ज्ञान के दृष्टिकोण से समझा जाना चाहिए।"

इस राय में न्यायालय ने कैलाश नाथ कोठारी (सुप्रा.) में दिए गए आदेश का अनुसरण किया।

18. जैसा कि यहां पहले देखा गया है, कानूनी सिद्धांत स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अपीलार्थी दावेदारों को कोई मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी नहीं था।

19. उपरोक्त कारणों से, आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता। इसे तदनुसार रदद् किया जाता है। अपील बिना किसी लागत स्वीकार की जाती है।

इसके बाद, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड बनाम रेशमा और अन्य (सुप्रा.)** के मामले में, पैरा संख्या 22 से 25 में इसी तरह के मुद्दे के संबंध में निम्नानुसार विचार किया है:-

22. वर्तमान मामले में, जैसा कि तथ्य उजागर किए गए हैं, अपीलार्थी बैंक ने वाहन की खरीद के लिए मालिक को वित्तपोषित किया था और मालिक ने बैंक के साथ एक बंधक समझौता किया था। उधारकर्ता पर वाहन का बीमा कराने का प्रारंभिक दायित्व था, लेकिन

बिना बीमा के उसने वाहन को सड़क पर चला दिया और दुर्घटना हो गई। यदि वाहन का बीमा कराया गया होता तो बीमा कंपनी उत्तरदायी होती न कि मालिक। इस तथ्य पर कोई संदेह नहीं है कि वाहन दृष्टिबंधक समझौते के अधीन था और प्रत्यर्थी संख्या 2 के अधीन कब्ज़े और नियंत्रण में था। उच्च न्यायालय ने मुख्य निर्णय के साथ-साथ समीक्षा में भी कहा है कि फाइनेंसर मालिक के समान है। हमारी सुविचारित राय में कचराजी रायमलजी (सुप्रा.) पर भरोसा करना अनुचित था क्योंकि तत्काल मामले में सभी दस्तावेज बैंक द्वारा दाखिल किए गए थे। उक्त मामले में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने किराया-खरीद समझौते की दृष्टि से अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच संबंधों पर संदेह किया था। जो भी हो, उक्त मामला अपने तथ्यों पर आधारित था। कैलाश नाथ कोठारी (सुप्रा.) के निर्णय में, न्यायालय ने 'मालिक' की परिभाषा के संबंध में निगम पर दायित्व तय किया, जो वाहन के नियंत्रण और कब्जे में था। इसी आशय में दीपा देवी (सुप्रा.) में निर्णय दिया गया है। जैसा कि कहा गया है, उक्त मामले में न्यायालय ने निर्णय दिया कि राज्य दावेदार को मुआवजे की राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा, न कि वाहन के पंजीकृत मालिक और बीमा कंपनी को डेगाला सत्यनारायणम्मा (सुप्रा.) के मामले में, विद्वान न्यायाधीशों ने दीपा देवी (सुप्रा.) मामले में निर्णय के अनुपात को इस आधार पर अलग किया कि यह अपने विशेष तथ्यों पर निर्भर करता है और बीमाकर्ता पर दायित्व तय करता है। कुलसुम (सुप्रा.) मामले में, कैलाश नाथ कोठारी (सुप्रा.) मामले में बताए गए सिद्धांत को अलग किया गया था और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रासंगिक समय में, प्रश्नगत में वाहन का बीमा किया गया था और पॉलिसी पूरी तरह प्रभावी थी और इसलिए, बीमाकर्ता मालिक को क्षतिपूर्ति देने के लिए उत्तरदायी था।

23. उपरोक्त मामलों में बताए गए सिद्धांतों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर, यह पाया गया है कि इसमें एक सामान्य बात यह है कि हाइपोथेकेशन समझौते के तहत वाहन के कब्जे वाले व्यक्ति को मालिक माना गया है। जोर देने की जरूरत नहीं है, यदि वाहन का बीमा किया गया है, तो जब तक कि पॉलिसी की उन शर्तों का उल्लंघन न हो जिसके तहत बीमाकर्ता दोषमुक्ति की मांग कर सकता है, बीमाकर्ता क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य है।

24. पूर्ण्या कला देवी (सुप्रा.) में, तीन-न्यायाधीशों की खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से माना है कि हाइपोथेकेशन के समझौते के तहत वाहन के नियंत्रण और कब्जे वाले व्यक्ति को

मालिक माना जाना चाहिए, न कि केवल पंजीकृत मालिक को और उसके बाद न्यायालय ने विधायी मंशा के अनुरूप, निर्णय सुनाया कि यदि वाहन उसके कब्जे और नियंत्रण में नहीं है तो वाहन के पंजीकृत मालिक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 146 में संदर्भ है कि कोई भी व्यक्ति बिना बीमा के सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन का उपयोग नहीं करेगा और किसी अन्य व्यक्ति को उपयोग करने की अनुमति नहीं देगा क्योंकि यह 1988 के अधिनियम के तहत अनिवार्य वैधानिक आवश्यकता है। मौजूदा मामले में, अपीलार्थी का पूर्ववर्ती, सेंचुरियन बैंक, प्रत्यर्थी संख्या 2 के साथ पंजीकृत मालिक था। प्रत्यर्थी सं. 2 के पास वाहन का नियंत्रण और कब्ज़ा था। उसने बीमा कंपनी को पूरा प्रीमियम चुकाए बिना और वाहन का बीमा कराए बिना डीलर से वाहन ले लिया था। उच्च न्यायालय ने ग़लत राय दी है कि यदि उधारकर्ता वाहन का बीमा कराने में विफल रहता है तो फाइनेंसर की ज़िम्मेदारी है कि वह वाहन का बीमा कराए। हाइपोथेकेशन समझौते में उल्लिखित शब्द यह नहीं बताता है कि अपीलार्थी फाइनेंसर मालिक बन गया था और वाहन का नियंत्रण और कब्ज़ा उसके पास था। बीमा का पूरा भुगतान किए बिना डीलर से वाहन लेना प्रत्यर्थी संख्या 2 की पूर्ण गलती थी। ऐसा कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है कि यह तथ्य अपीलार्थी फाइनेंसर को पता था या यह फाइनेंसर की मिलीभगत से किया गया था। जब विधायिका का यह इरादा बिल्कुल स्पष्ट है, तो वाहन के पंजीकृत मालिक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जाना चाहिए यदि वाहन उसके कब्जे और नियंत्रण में नहीं है और रिकॉर्ड पर साक्ष्य है कि प्रत्यर्थी संख्या 2, ने बिना बीमा के 1988 की धारा 146 में निहित वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करते हुए वाहन चलाया अधिनियम के अनुसार, उच्च न्यायालय फाइनेंसर पर दायित्व नहीं बढ़ा सकता था। अपील में विद्वान एकलपीठ द्वारा की गई सराहना, तथ्य और कानून दोनों में, पूरी तरह से अस्थिर है।

25. उपरोक्त के मद्देनजर, हम अपील की अनुमति देते हैं और मानते हैं कि पंचाट को संतुष्ट करने का दायित्व मालिक, प्रत्यर्थी संख्या 2 का है, यहां फाइनेंसर का नहीं है और तदनुसार पंचाट में निर्देश का वह हिस्सा रद्द किया जाता है। हालाँकि, जैसा कि अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने स्वीकार किया है, राशि की वसूली के लिए कोई कदम नहीं उठाया जाएगा। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।"

बजाज ऑटो फाइनेंस लिमिटेड बनाम श्रीमती प्रेम और अन्य नामक एसबीसीएमए संख्या 439/2002 में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय का अवलोकन, इंगित करता है कि 1988 के अधिनियम की धारा 146 और 168 के तहत प्रावधान और **गोदावरी फाइनेंस कंपनी (सुप्रा.)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया।

कानून के स्थापित प्रस्ताव के मद्देनजर, विद्वान एकलपीठ ने 1988 के अधिनियम की धारा 146 और 168 के तहत निहित प्रावधानों और माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय की अज्ञानतावश **गोदावरी फाइनेंस कंपनी (सुप्रा.)** के मामला एसबीसीएमए संख्या 439/2002 का निर्णय किया है।

न्यायिक मर्यादा और कानूनी औचित्य की मांग है कि जहां एकलपीठ या खंड पीठ समन्वय क्षेत्राधिकार वाली पीठ के निर्णय से सहमत नहीं है, तो मामले को बड़ी पीठ को भेजा जाएगा। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सुंदरदास कन्यालाल भथिजा एवं अन्य बनाम **कलेक्टर, ठाणे, महाराष्ट्र** ने एआइआर 1990 एससी 261 के मामले में यह दृष्टिकोण अपनाया गया।

अय्यास्वामी गौंडर बनाम मुनुस्वामी गौंडर एआईआर 1984 एससी 1789 मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि यदि किसी उच्च न्यायालय की एकलपीठ उसी उच्च न्यायालय के एकलपीठ के पहले के निर्णय से सहमत नहीं है, तो उसे इस मामले को बड़ी बेंच चाहिए। और औचित्य और शिष्टाचार उसके विपरीत दृष्टिकोण नहीं अपनाने देता है।

रामा राव और अन्य बनाम शांतिबाई और अन्य एआईआर 1977 एमपी 222 के मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने माना कि एकलपीठ का पूर्व का निर्णय इन्क्युरियम के अनुसार दिया गया था, क्योंकि यह उस न्यायालय द्वारा पहले कई मामलों में लिए गए दृष्टिकोण के विपरीत था, जिन पर एकलपीठ ने ध्यान नहीं दिया था।

इसी तरह **आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने थुराका ओन्नूरम्मा और अन्य बनाम तहसीलदार, कादिरी और अन्य एआईआर 1980 एपी 267** के मामले में दी गई रिपोर्ट में माना गया है कि वैधानिक प्रावधान की अनदेखी करके दिया गया निर्णय इंक्यूरियम के अनुसार माना जाएगा।

मद्रास उच्च न्यायालय ने **फिलिप जयसिंह बनाम संयुक्त रजिस्ट्रार ने 1992 में रिपोर्ट दी**

(2) एमएलजे 309 के मामले में ऐसा माना है:

“अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि वैधानिक प्रावधान की अनदेखी करके दिए गए निर्णय को पेरिनक्यूरियम के रूप में माना जाएगा और इसे बाध्यकारी मिसाल नहीं माना जा सकता है। न्यायशास्त्र पर सैल्मंड, बारहवां संस्करण, पृष्ठ 150, में कहा गया है, "कोई मिसाल यदि इसे किसी क़ानून या किसी क़ानून की शक्ति वाले नियम अर्थात प्रत्यायोजित कानून की अज्ञानता में प्रस्तुत किया गया था, बाध्यकारी नहीं है।" सैल्मंड इस प्रस्ताव के समर्थन में लंदन स्ट्रीट ट्रामवेज बनाम लंदन काउंटी काउंसिल, 1898 ए.सी. 375 में हाउस ऑफ लॉर्ड्स में लॉर्ड हैल्सबरी के उच्च अधिकार और यंग बनाम ब्रिस्टल एयरप्लेन के उस प्रसिद्ध मामले में अपील की न्यायालय में लॉर्ड ग्रीन एम.आर. के उच्च अधिकार का हवाला देते हैं। कंपनी लिमिटेड (1944)1 के.बी. 718. प्रति इंक्यूरियम निर्णयों के उदाहरण के रूप में सैल्मंड एक ऐसे मामले का हवाला देते हैं जहां न्यायालय क़ानून को जानती थी लेकिन उसने क़ानून की सटीक शर्तों का उल्लेख नहीं किया था, साथ ही ऐसे मामले में जहां न्यायालय क़ानून को जानती थी लेकिन मामले में इसकी प्रासंगिकता की सराहना करने में विफल रही थी। इंक्यूरियम के सिद्धांत के व्यापक दायरे पर सैल्मंड का कहना है कि, "यहां तक कि कोई न्यायालय भी ऐसे आधारों पर एक मिसाल कायम कर सकती है।"

एस काशी बनाम मदुरै जिले के समयनल्लूर पुलिस स्टेशन के पुलिस निरीक्षक के माध्यम से राज्य आपराधिक अपील संख्या 452/2020 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि:

“यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक समन्वय पीठ विपरीत दृष्टिकोण नहीं ले सकती है और यदि कोई संदेह है, तो समन्वय पीठ ही मामले को बड़ी पीठ के पास विचार के लिए भेज सकती है। न्यायिक अनुशासन ऐसा आदेश देता है। यह न्यायालय पंजाब सरकार और अन्य बनाम डेवन्स मॉडर्न ब्रुअरीज लिमिटेड, (2004) 11 एससीसी 26, मामले में पैराग्राफ 339 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया है:-

“339. न्यायिक अनुशासन की परिकल्पना है कि एक समन्वय पीठ पहले की समन्वय पीठ के निर्णय का पालन करे। यदि एक समन्वय पीठ किसी अन्य पीठ द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों से सहमत नहीं है, तो मामले को केवल बड़ी पीठ को भेजा जा सकता है। (देखें प्रदीप चंद्र परीजा बनाम प्रमोद चंद्र पटनायक, (2002) **1 एससीसी 1 मामला जो यूनियन ऑफ इंडिया बनाम हंसोली देवी,** (2002) 7 एससीसी 273 पालन किया गया

लेकिन कोई निर्णय समन्वय पीठ द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत या असंगत हो सकता है। कल्याणी स्टोर्स (सुप्रा.) और के.के. नरूला (सुप्रा.) दोनों में निर्णय का प्रतिपादन संविधान पीठों द्वारा किया गया है। इसलिए, उक्त निर्णयों को किसी भी उद्देश्य के लिए खारिज नहीं किया जा सकता है; और भी अधिक जब इन दोनों को सामूहिक रूप से प्रस्तावित किसी विपरीत निर्णय पर वार किया जाए।

श्री जगदीश डेका बनाम असम सरकार के मामले में डब्ल्यू.ए. संख्या 158/2009 में गौहाटी उच्च न्यायालय ने ऐसा माना है:

"इसी तरह 2003 (5) एससीसी 448 में रिपोर्ट किए गए बिहार सरकार बनाम कालिका कुएर मामले में, उच्चतम न्यायालय ने उन परिस्थितियों की जांच की जिसमें निर्णय "प्रति इंक्यूरियम" दिया जा सकता है।

इंग्लैंड के हैल्सबरी के कानूनों के अंश का हवाला देते हुए, इसे पैरा 5 में इस प्रकार रखा गया था:

5. इस बिंदु पर हम इस बात की जांच कर सकते हैं कि किन परिस्थितियों में किसी निर्णय को प्रति इंक्यूरियम के अनुरूप प्रतिपादित किया गया माना जा सकता है। हैल्सबरी के इंग्लैंड के नियम (चौथा संस्करण) खंड 26 निर्णय और आदेश में प्राधिकारियों के रूप में न्यायिक निर्णय (पृ.297-98, पैरा 578) हम पाते हैं कि इसे प्रति इंक्यूरियम के बारे में निम्नानुसार देखा गया है:

"किसी निर्णय को तब प्रति इंक्यूरियम के रूप में दिया हुआ माना जाता है जब न्यायालय ने अपने या समन्वित क्षेत्राधिकार की न्यायालय के पिछले निर्णय की अनदेखी करते हुए दिया गया हो, जिसमें उसके पहले मामले को शामिल किया गया था, जिस स्थिति में उसे यह तय करना होगा कि किस मामले का पालन करना है या कब उसने कार्रवाई की है हाउस ऑफ लॉर्ड्स के निर्णय की अज्ञानता, ऐसी स्थिति में उसे उस निर्णय का पालन करना होगा; या जब निर्णय वैधानिक बल वाले क़ानून या नियम की शर्तों की अनदेखी में दिया जाता है। हालाँकि, किसी निर्णय को प्रति इनक्यूरियम के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, केवल पार्टियों की कमी के कारण, या क्योंकि न्यायालय को सर्वोत्तम तर्क का लाभ नहीं मिला, और, एक सामान्य नियम के रूप में, केवल ऐसे मामले जिनमें निर्णय होने चाहिए प्रति इंक्यूरियम दिए जाने वाले वे हैं जो किसी असंगत क़ानून या बाध्यकारी प्राधिकारी की अज्ञानता में दिए गए हैं। भले ही अपील न्यायालय के किसी निर्णय ने हाउस ऑफ लॉर्ड्स

के पिछले निर्णय की गलत व्याख्या की हो, अपील न्यायालय को अपने पिछले निर्णय का पालन करना चाहिए और गलती को सुधारने के लिए हाउस ऑफ लॉर्ड्स को छोड़ देना चाहिए।

हडर्सफ़ील्ड पुलिस अथॉरिटीज़ मामले में सीजे लॉर्ड गोडार्ड ने कहा कि जहां कोई मामला या क़ानून न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था और न्यायालय ने मामले या क़ानून के अस्तित्व की अज्ञानता या विस्मृति में निर्णय दिया था, यह एक प्रति इंक्यूरियम निर्णय होगा।"

इसी तरह, आधिकारिक परिसमापक बनाम दयानंद [(2008) 10 एससीसी 1] में रिपोर्ट किए गए मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह सवाल उठा कि उस निर्णय का प्रभाव क्या है जब इसे अन्य समन्वय पीठ द्वारा दिए गए पहले के निर्णयों की अनदेखी में प्रस्तुत किया गया है।

उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धृत करना उचित है:

“78. उच्च न्यायालयों की विभिन्न पीठों द्वारा समन्वय और यहां तक कि बड़ी पीठों के निर्णयों/आदेशों का पालन नहीं करने के कई उदाहरण हो सकते हैं। कुछ मामलों में, उच्च न्यायालय बिना किसी ठोस कारण के इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की अनदेखी करने की हद तक चले गए हैं। इसी तरह, ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें इस न्यायालय की छोटी पीठों ने संविधान पीठों सहित बड़ी पीठों के निर्णयों को या तो नजरअंदाज कर दिया है या दरकिनार कर दिया है। ये मामले न्यायिक अनुशासन के नियम का पालन न करने का उदाहरण हैं जो व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अनिवार्य है। महादेवलाल कनोडिया बनाम डब्ल्यू.बी. के प्रशासक जनरल (एआईआर पृष्ठ 941, पैरा 19) में। इस न्यायालय ने कहा:

“19. ...कानून में यदि कोई एक चीज़ किसी भी अन्य चीज़ से अधिक आवश्यक है, तो वह निश्चितता का गुण है। यदि उच्च न्यायालय में समन्वित क्षेत्राधिकार के न्यायाधीश एक-दूसरे के निर्णयों को खारिज करना शुरू कर दें तो यह गुणवत्ता पूरी तरह से गायब हो जाएगी। यदि उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ किसी अन्य खंडपीठ के पिछले निर्णय को अलग करने में असमर्थ है, और यह विचार रखती है कि पिछला निर्णय गलत है, तो वह स्वयं उस दृष्टिकोण को प्रभावी बनाती है, परिणाम पूरी तरह से भ्रम होगा। स्थिति उतनी ही खराब होगी जहां उच्च न्यायालय में एकलपीठ की राय है कि कानून के प्रश्न पर किसी

अन्य एकलपीठ का पिछला निर्णय गलत है और मामले को एक बड़ी पीठ को संदर्भित करने के बजाय उस दृष्टिकोण को प्रभावी बनाता है। ऐसे मामले में अधिवक्ताओं को यह नहीं पता होगा कि अपने ग्राहकों को किस तरह की सलाह दी जाए और उच्च न्यायालय के अधीनस्थ सभी अदालतें खुद को अपने ही उच्च न्यायालय के असहमतिपूर्ण निर्णयों के बीच चयन करने की शर्मनाक स्थिति में पाएंगी।

तब न्यायधीश महोदय ने लाला श्री भगवान बनाम राम चंद (एआईआर 1965 एससी 1767) में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय के पहले के निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय सुनाया था:

"18. ... इस बात पर ज़ोर देना शायद ही आवश्यक है कि न्यायिक औचित्य और मर्यादा के विचार के लिए यह आवश्यक है कि यदि किसी मामले की सुनवाई करने वाला विद्वान एकलपीठ यह विचार करने के लिए इच्छुक है कि उच्च न्यायालय के पहले के निर्णय, चाहे वह खंडपीठ के हों या एकलपीठ के, उन पर पुर्नविचार की आवश्यकता है। पुनर्विचार के लिए, उन्हें एकलपीठ के रूप में बैठकर उस जांच को शुरू नहीं करना चाहिए, बल्कि मामले को किसी खंडपीठ को भेजना चाहिए या, उचित मामले में, मुख्य न्यायाधीश के समक्ष संबंधित कागजात रखना चाहिए ताकि वह एक बड़ी बेंच का गठन कर सकें। ऐसे मामलों से निपटने का यही उचित और पारंपरिक तरीका है और यह न्यायिक मर्यादा और औचित्य के स्वस्थ सिद्धांतों पर आधारित है। यह खेदजनक है कि विद्वान एकलपीठ ने वर्तमान मामले में इस पारंपरिक तरीके से हटकर स्वयं प्रश्न की जांच करने का निर्णय किया।

ऐसी स्थिति में जहां 1988 के अधिनियम की धारा 148 और 168 के प्रावधानों और **गोदावरी फाइनेंस कंपनी (सुप्रा.)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को इस न्यायालय के एसबीसीएमए संख्या 439/2002 पर निर्णय लेते समय समन्वय पीठ के ध्यान में नहीं लाया गया था। और **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड (सुप्रा.)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के बाद के दृष्टिकोण को देखते हुए इस न्यायालय के पास इस मामले को एक विशेष/बड़ी पीठ के पास भेजने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। ताकि विवाद को कानून के अनुसार शांत किया जा सके, तदनुसार, यह न्यायालय निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए इस मामले को विशेष/बड़ी पीठ के पास भेजता है।:-

(i) क्या एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 439/2002 में दिनांक 11.04.2012

को समन्वय पीठ द्वारा पारित आदेश **गोदावरी फाइनेंस कंपनी (सुप्रा.)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय और मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 146 और 168 के तहत निहित प्रावधानों की अनदेखी करते हुए पारित किया गया?

(ii) क्या इस अपील पर **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड बनाम रेशमा (सुप्रा.)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में एसबीसीएमए 439/2002 में 10.08.2002 के आक्षेपित निर्णय और पंचाट, जियपे अंतिम स्थिति प्राप्त कर ली है, के विरूद्ध इसका निपटान करते हुए 11.04.2012 के आदेश के तहत विपरीत विचार रखते हुए निर्णय किया जा सकता है?

इस मामले को अब प्रशासनिक पक्ष से माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष एक विशेष/पूर्ण पीठ के गठन के लिए रखा जाएगा ताकि इस न्यायालय द्वारा उत्तर के लिए विशेष/पूर्ण पीठ को भेजे गए उपरोक्त दो प्रश्नों पर निर्णय लिया जा सके।

(अनूप कुमार ढंड), न्यायमूर्ति

Ashu/2

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल**,** द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।